International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

योग सूत्रों के अनुसार मनोरोगो की चिकित्सा

प्रियंका गुलेरिया[1], डॉ. अर्पिता नेगी[2]

1. शोधार्थी, हिमाचलप्रदेशविश्वविद्यालय
2. सहायकआचार्य, हिमाचलप्रदेशविश्वविद्यालय

सार

योग मुख्यतः एक जीवन पद्धति है, जिसे पतंजलि ने क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया था। इसमें यम, नियम, आसन,प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि आठ अंग है। योग के इन अंगों के अभ्यास से सामाजिक तथा व्यक्तिगत आचरण में सुधार आता है, शरीर में ऑक्सीजन युक्त रक्त के भली–भॉति संचार होने से शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार होता है, इंद्रियां संयमित होती है तथा मन को शांति एवं पवित्रता मिलती है। योग के अभ्यास से मनोदैहिक विकारों/व्याधियों की रोकथाम, शरीर में प्रतिरोधक शक्ति की बढोतरी तथा तनावपूर्ण परिस्थितियों में सहनशक्ति की क्षमता आती है। ध्यान का, जो आठ अंगो में से एक है, यदि नियमित अभ्यास किया जाए तो शारीरिक अहितकर प्रतिक्रियाओं को घटाने की क्षमता बढती है, जिससे मन को सीधे ही अधिक फलदायक कार्यो में संलग्न किया जा सकता है।

यद्यपि योग मुख्यतः एक जीवन पद्धति है, तथापि, इसके प्रोत्साहक, निवारक और रोगनाशक अन्तःक्षेप प्रभावोत्पादक है। योग के ग्रंथो में स्वास्थ्य के सुधार, रोगों की रोकथाम तथा रोगों के उपचार के लिए कई आसानों का वर्णन किया गया है । शारीरिक आसनों का चुनाव विवेकपूर्ण ढंग से करना चाहिए। रोगों की रोकथाम, स्वास्थ्य की उन्नति तथा चिकित्सा के उद्देश्यों की दृष्टि से उनका सही चयन कर सही विधि से अभ्यास करना चाहिए । अध्ययनों से यह प्रदर्शित होता है कि योगिक अभ्यास से बुद्धि तथा स्मरण शक्ति बढती है तथा इससे थकान एवं तनावो को सहन करने, सहने की शक्ति को बढाने मे तथा एकीकृत मनोदेहिक व्यक्तित्व के विकास में भी मदद मिलती है। ध्यान एक दूसरा व्यायाम है, जो मानसिक संवेगों मे स्थिरता लाता है तथा शरीर के मर्मस्थलों के कार्यो को असामान्य करने से रोकता है । अध्ययन से देखा गया है कि ध्यान न केवल इन्द्रियों को संयमित करता है, बल्कि तंत्रिका तंत्र को भी नियंमित करता है।

भूमिका

महर्षि पतंजलि ने साधनपाद में समाहित चित्त वाले योग के उत्तम अधिकारियों के लिये योग साधना का मार्ग अभ्यास वैराग्य मार्ग बताया है तथा उन अधिकारियों के लिये जिनका चित्त सांसारिक वासनाओं तथा राग द्वेष आदि से कलुषित है। उनके लिये अभ्यास व वैराग्य की साधना कठिन होती है। मध्यम कोटी के साधकों का भी चित्त

शुद्ध होकर अभ्यास और वैराग्य का सम्पादन कर सके, इस प्रकार चित्त की एकाग्रता के लिये क्रियायोग का मार्ग बताया गया है। महर्षि पतंजलि ने उत्तम कोटि के साधकों के लिये समाधि पाद की रचना की है। जिसमें उन्होंने अभ्यास वैराग्य की बात कही है। समाधिपाद में भावना प्रधान है क्रिया नहीं। साधनपाद में मध्यम कोटि के साधकों के लिये क्रिया योग बताया गया हे। इस क्रिया योग में क्रियात्मक पहलुओं का समावेश है। क्रियायोग के तीन साधन है – तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान। क्रिया योग में क्रियात्मक पहलुओं का समावेश होने के कारण ही क्रियायोग नाम पड़ा।

पतंजलि के अनुसार, आंतरिक शुद्धिकरण में निम्नलिखित आठ आध्यात्मिक प्रथाएं शामिल हैं:

1) यम नैतिकता ,
2) नियम ख्आत्म–शुद्धिकरण और अध्ययन,
3) आसन ख्मुद्रा,
4) प्राणायाम ख्सांस नियंत्रण,
5) प्रतिहार ख्भावना नियंत्रण,
6) धारण ख्एकाग्रता,
7) ध्यान
8) समाधि ख्सार्वभौमिक में अवशोषण

पहले चार बाहरी रूप से सम्बन्धित हैं और हम कैसे दुनिया से जुड़ा है, इसमें विभिन्न तरीकों (यम और नियम), शरीर के नियंत्रण को आसन के माध्यम से और प्राणायाम के माध्यम से सांस के नियंत्रण में करना शामिल हैं। पिछले चार अंग अभ्यास के कई वर्षों के बाद स्वचालित रूप से पालन करने होता हैंरू प्रतिहार, धारणा, ध्यान और समाधि (मुक्ति) ।

यम

यम का अर्थ है चित्त को धर्म में स्थित रखने के साधन । ये पांच हैं

- अहिंसाः मन, वचन व कर्मद्वारा किसी भी प्राणी को किसी तरह का कष्ट न पहुंचने की भावना अहिंसा है। दूसरे शब्दों में, प्राणिमात्र से प्रेम अहिंसा है।
- सत्यः जैसा मन ने समझा, आंखों ने देखा तथा कानों ने सुना, वैसा ही कह देना सत्य है। लेकिन सत्य केवल बाहरी नहीं, आंतरिक भी होना चाहिए।
- अस्तेयः मन, वचन, कर्म से चोरी न करना, दूसरे के धन का लालच न करना और दूसरे के सत्व का ग्रहण न करना अस्तेय है।

- ❖ ब्रह्मचर्यः अन्य समस्त इंद्रियों सहित गुप्तेंद्रियों का संयम करना–खासकर मन, वाणी और शरीर से यौनिक सुख प्राप्त न करना–ब्रह्मचर्य है।
- ❖ अपरिग्रहः अनायास प्राप्त हुए सुख के साधनों का त्याग अपरिग्रह है। अस्तेय में चोरी का त्याग, किंतु दान को ग्रहण किया जाता है। परंतु अपरिग्रह में दान को भी अस्वीकार किया जाता है। स्वार्थ के लिए धन, संपत्ति तथा भोग सामग्रियों का संचय परिग्रह है और ऐसा न करना अपरिग्रह।

उपरोक्त पांचों साधन व्यक्ति की नैतिकता और उसके विकास, उसकी स्थिरता (टिकाव) से तो जुड़े हुए हैं ही, समाज के संदर्भ में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, विशेषकर तब, जब विकास और उन्नति भौतिकता की धुरी पर धूम रही हो, अर्थात् आज के समय में।

उच्च प्रकार की शक्ति प्राप्त होने तक नित्यप्रति शारीरिक और मानसिक आसन करने पड़ते हैं । योगियों ने इस प्रकार के आसन, प्राणायाम आदि का वर्णन किया है, जिनके करने से शरीर एवं मन पर संयम होता है।

आसन की सिद्धि से नाड़ियों की शुद्धि, आरोग्य की वृद्धि एवं शरीर व मन को स्फूर्ति प्राप्त होती है। उद्देश्यों के भेद के कारण ये आसन दो श्रेणियों में आते हैं; एक जिनका उद्देश्य प्राणायाम या ध्यान का अभ्यास है और दूसरे वे जो कि शरीर को निरोग बनाये रखने के लिए किये जाते हैं। क्योंकि शरीर और मन का संबंध स्थूल और सूक्ष्म का है इसलिए इन दोनों ही श्रेणियों को एक–दूसरे से अलग–अलग करके नहीं देखा जा सकता। दूसरे शब्दों में, प्राणायाम और ध्यान का अधिकारी तो वही है, जिसने शरीर का पूरी तरह से शोधन कर लिया हो, और यह शोधन बिना आसनों के संभव नहीं है। स्थिर और सहज बैठने के लिए जो शक्ति और धैर्य चाहिए वह भी आसनों से ही मिलता है।

बहुत से लोग प्राण का अर्थ श्वास या वायु लगाते हैं और प्राणायाम का अर्थ श्वास का व्यायाम बताते हैं, किन्तु यह धारणा गलत और भ्रामक है क्योंकि प्राण वह शक्ति है, जो वायु में क्या विश्व के समस्त सजीव और निर्जीव पदार्थों में व्याप्त है।प्राणायाम का उद्देश्य शरीर में व्याप्त प्राण शक्ति को उत्प्रेरित, संचारित, नियंत्रित और संतुलित करना है। इससे हमारा शरीर तथा मन नियंत्रण में आ जाता है। हमारे निर्णय करने की शक्ति बढ़ जाती है और हम सही निर्णय करने की स्थिति में आ जाते हैं।

शरीर की शुद्धि के लिए जैसे स्नान की आवश्यकता है, वैसे ही मन की शुद्धि के लिए प्राणायाम की। प्राणायाम से हम स्वस्थ और निरोग होते हैं, दीर्घायु प्राप्त करते हैं, हमारी स्मरण शक्ति बढ़ती है और मस्तिष्क के रोग दूर होते हैं।

जब इंद्रियाँ अपने विषयों से मुड़कर अंतर्मुखी होती हैं, उस अवस्था को प्रत्याहार कहते हैं । सामान्यतरू इंद्रियों की स्वेच्छाचारिता प्रबल होती है। प्रत्याहार की सिद्धि से साधक को इंद्रियों पर अधिकार, मन की निर्मलता, तप की वृद्धि, दीनता का क्षय, शारीरिक आरोग्य एवं समाधि में प्रवेश करने की क्षमता प्राप्त होती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम

के अभ्यास से साधक का शरीर शुद्ध और स्वस्थ हो जाता है, मन और इंद्रियां शांत हो जाती हैं, उनमें एकाग्रता आ जाती है। प्रभु की असीम शक्ति का आभास होता है और साधक अपने को प्रभु में लीन रखने लगता है। इस प्रकार इस अभ्यास से प्रत्याहार के लिए सुदृढ भूमिका तैयार हो जाती है।

स्थूल वा सूक्ष्म किसी भी विषय में अर्थात् हृदय, भृकुटि, जिह्वा, नासिका आदि आध्यात्मिक प्रदेश तथा इष्ट देवता की मूर्ति आदि बाह्य विषयों में चित्त को लगा देने को धारणा कहते हैं । यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि के उचित अभ्यास के पश्चात् यह कार्य सरलता से होता है। प्राणायाम से प्राण वायु और प्रत्याहार से इंद्रियों के वश में होने से चित्त में विक्षेप नहीं रहता, फलस्वरूप शांत चित्त किसी एक लक्ष्य पर सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है। विक्षिप्त चित्त वाले साधक का उपरोक्त धारणा में स्थित होना बहुत कठिन है। जिन्हें धारणा के अभ्यास का बल बढ़ाना है, उन्हें आहार–विहार बहुत ही नियमित करना चाहिए तथा नित्य नियमपूर्वक श्रद्धा सहित साधना व अभ्यास करना चाहिए।

ध्यान का तात्पर्य है, वर्तमान में जीना। वर्तमान में जीकर ही मन की चंचलता को समाप्त किया जा सकता है, एकाग्रता लायी जा सकती है। इसी से मानसिक शक्ति के सारे भंडार खुलते हैं। उसी के लिए ही ध्यान की अनेक विधियां हैं।

क्रियायोग द्वारा मनोचिकित्सा

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।

(सरस्वती विज्ञानानन्दपृष्ठ– 55)

अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान ये तीनो ं क्रियायोग है। अर्थात् क्रियायोग एक ऐसी यौगिक प्रक्रिया है, जो पूर्ण रूपेण मनोचिकित्सागत सम्बन्ध है। इस क्रिया के माध्यम मनोभूमि में अचूक परिवर्तन आता है और दूषित विचार मन से सहज रूप से निकल जाते है।मनोरोगी वह है, जिसके विचारों मे कही गलत अवधारणा व विचारो ं में विच्छेद है। इन विचार रूपी विच्छेद को दूर कर पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए–क्रियायोग जैसी मनोचिकित्सा सरल और कारगार है।

तपः–अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार शारीरिक या मानसिक रूप से पालन करना और उसे सहर्ष सहन–करना इसका नाम ''तप'' है। व्रत, उपवास आदि भी इसी में आ जाते है। निष्काम भाव से इस तप का पालन करने से मनुष्य का अन्तःकरण अनायास ही शुद्ध हो जाता है, यह गीतोक्त कर्मयोग की अंग है। इस प्रकार तप के माध्यम से मनोरोगों का मनोचिकित्सा का सार्थक प्रभाव देखा जा सकता है।

क्रियायोग का दूसरा पक्ष स्वाध्याय है, स्वाध्याय से भी मनोचिकित्सा होती है। स्वाध्यायः–स्वाध्याय का शाब्दिक अर्थ आत्म–विश्लेषण तथा ग्रन्थों का अध्ययन, मनन होता है। जब कोई व्यक्ति स्वाध्याय करता है तो उसके अन्दर से

नकारात्मक विचार, सकारात्मक विचारो ं के अधिक आ जाने के कारणए मनोरोग रूपी भ्रम, गलत विश्वास एवं गलत विचार दूर हो जाता है। ईश्वर प्राणिधानः–ईश्वर प्राणिधान का सामान्य अर्थ ईश्वर के समक्ष पूर्ण समर्पण होता हैं। परन्तु यहाँ इसका अर्थ गहन चेतना और आन्तरिक सजगता के विलय से है। ईश्वर के शारणागत्र हो जाने का नाम 'ईश्वर प्राणिधान' है। क्रियायोग एक व्यवहारिक चिकित्सा पद्धति है, जिससे आत्मशुद्धि, आत्मदर्शन और चेतना का परिष्कार होता है। इस क्रियायोग के अभ्यास से उष्मा उत्पन्न होती है, चेतना विकसित होती है और मन उच्च चेतना के समक्ष प्रस्तुत होता है। अर्थात् क्रियायोग पूर्ण मनोचिकित्सा है, जिससे मनोरोग की चिकित्सा करना सम्भव है।

अभ्यास व वेराग्य द्वारा मनोचिकत्सा

महर्षि पतंजलि ने योग साधना की प्राप्ति चित्त की वृत्तियो के सर्वथा अभाव के द्वारा ही प्राप्त हो सकती हैं। चित्त जो कि मन, बुद्धि व अहंकार का सम्मिलित रूप है। चित्त शान्त जलाशय की भॉति है। परन्तु हमारे चित्त में वृत्ति रूपी लहरें इस शान्त जलाशय को तरंगित करती रहती है। लहरो के कारण जिस प्रकार मनुष्य चन्द्रमा का प्रतिबिम्व उस जलाशय में नही देख पाता, उसी प्रकार मनुष्य इन वृत्तियो की वासना रूपी तरंगो के निरन्तर उठते रहने के कारण आत्म तत्व का बोध नही कर पाता है। योग के लक्ष्य को प्राप्त नही कर पाता है।

इन वृत्तियो की तरंगो को सर्वथा रोक देने से ही हम आत्म तत्व के दर्शन कर पाते है। महर्षि पतंजलि ने समस्त योग का सार एक ही सूत्र में रखा है, कि चित्त की वृत्तियो का सर्वथा अभाव ही योग हैं। इन चित्त की वृत्तियो का निरोध (अभाव) अभ्यास और वैराग्य से होता हैं।

महर्षि पतंजलि ने वर्णन किया है कि साधक को भटकाने वाला उसका अपना चित्त ही है, व चित्त की वृत्तियॉ ही है। इन चित्त की वृत्तियो के निग्रह से, निरोध से ही योग सधता हैं। पर यह अभ्यास वैराग्य से सम्भव है। चित्त की स्थिरता के लिए बार – बार प्रयत्न करना ही अभ्यास है। मन को किसी एक ध्येय पर स्थिर करने की चेष्टा बारम्वार करना अभ्यास है। तथा वैराग्य अर्थात बिना राग के, जिसे यह कहा जा सकता है कि जिस मनुष्य को कोई आसक्ति नहीं है। महर्षि पतंजलि ने देखें गये तथा सुने गये विषयो के प्रति तृष्णा का अभाव हो जाना ही वैराग्य कहा है। वैराग्य शब्द भारतीय अध्यात्म में चिर – परिचित शब्द है।

वैराग्य अर्थात बिना राग के, यह कहा जा सकता हैं। मनुष्य को विषय भोगो के प्रति कोई भी आसक्ति ना हो वही वैराग्य है। भोगो की वासना का क्षय आत्म ज्ञान से ही हो पाता है। संसार से दुःखी हो कर उससे दूर भागना वैराग्य नही कहा जा सकता। विवेक ज्ञान द्वारा जब सत – असत की पहचान, सही गलत की ठीक समझ, उचित अन ुचित का सही ज्ञान, नाशवान व अविनाशी तत्व का बोध होने लगे तो समझना चाहिए कि वैराग्य सधने लगा। चित्त की वृत्तियो को रोकने के लिए एक साधन अभ्यास है तथा दूसरा वैराग्य है।

चित्त की विचारों को सर्वथा आदर्श स्तर, परोपकारगत बने रहे इसके लिए अभ्यास और वैराग्य की आवश्यकता पड़ती है। चित्त वृत्तियों का प्रवाह को रोकने का उपाय वैराग्य है और उसे कल्याणमार्ग में ले जाने का उपाय अभ्यास है।

"अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

(ब्रह्मलीनमुनि, स्वामी पृष्ठ–77)

अर्थात् लगातार अभ्यास और वैराग्य द्वारा वृत्तियों को रोका जा सकता है। चित्तवृत्ति निरूद्ध करने के दो उपाय है–अभ्यास और वैराग्य। चित्त का स्वाभाविक बहिर्मुख प्रवाह वैराग्य द्वारा निवृत होता है। अभ्यास द्वारा आत्मोन्मुख आन्तरिक प्रवाह स्थिर हो जाता है। इस सूत्र के माध्यम से जो हमारे अन्दर गलत आदत, विचार व चिन्तन है, उनको वैराग्य के माध्यम से हटाना और नये–व्यवहार और विचारों को सीखना जिससे कि हमारे चित्त में दबी पडी गलत विश्वास, आदतें, विचारों में शुद्धि होगी और व्यक्तित्व परिष्कृत होगा तथा मानसिक रोग दूर होगें। अभ्यास और वैराग्य से तात्पर्य मनोचिकित्सा में – व्यवहार शुद्धि का कार्य किया जाता है जो कि व्यवहार चिकित्सा के माध्यम से किया जाता है। मनोरोग को हमे ठीक करने के लिए हमारे व्यवहार को ठीक करना होगा, उसका क्रिया प्रतिक्रिया सन्तुलित करनी पडेगी और नये व्यवहार सही व्यवहार को मनोचिकित्सा से सीखना पड़ेगा।

"तत्र स्थितौ यत्नोभ्यासः।"

पं0 यो0 सू0 1/13

अर्थात् उन दोनों में से चित्त की स्थिरता के लिए जो प्रयत्न करता है वह अभ्यास है। जो स्वभाव से ही चंचल है ऐसे मन को किसी एक ध्येय में स्थिर करने के लिए बारम्बार चेष्टा करते रहने का नाम 'अभ्यास' है। यहां अभ्यास का तात्पर्य चित्त के वृत्ति–रहित हा`कर शान्त प्रवाह में बहने को स्थिति कहते है।

उस स्थिति को प्राप्त करने के लिए पूर्ण सामर्थ्य और उत्साहपूर्वक यत्न करना अभ्यास कहलाता है। मनोरोगी को यम, नियम तथा अष्टांग योग के अन्य अंगों का बार–बार अभ्यास कराया जाता है, जिससे हमारे अन्दर की गलत अवधारणाजैसे गलत आदते, व्यवहार में शुद्धता और मानसिक अनुशासन एवं नियन्त्रण आती है।

जिससे मनोरोगी ठीक होने लगती है। जिसप्रकार अभ्यास के बल से रस्सी पर नट वा सरकस करने वाला अपनी प्रकृति के विपरीत व्यवहार को सीख लेता है, ठीक उसी प्रकार ही व्यवहार चिकित्सा के माध्यम से महर्षि पतंजलि ने मनोरोगी के व्यवहार शोधन व विचार शोधन जैसी मनोचिकित्सा की प्रक्रिया क्रियायोग के अभ्यास के माध्यम से बताई गयी है। महर्षि पतंजलि ने अभ्यास के साथ–साथ वैराग्य की भी बात कही और बताया है कि इस क्रियाओं रूपी मनोचिकित्सा में अभ्यास और वैराग्य दोनों का महत्वपूर्ण भूमिका रहता है। मनोचिकित्सा में वैराग्य से तात्पर्य

जिस विचार या व्यवहार के माध्यम से हमें बेचैनी, तनाव, अनिद्रा, संताप जैसी परेशानियों का सामना करना पड़ता है, ऐसे विचार एवं व्यवहार को वैराग्य के द्वारा दूर करते है।

''दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।''

पं0 यो0 सू0 1/15

अर्थात् जब व्यक्ति अनुभूत एवं श्रुत इंद्रिय सुखों की वासना से मुक्त हो जाता है तो चेतना की इस अवस्था को वैराग्य कहते है। वैराग्य से सुख और शान्ति अबाधित और अपरिवर्तित होती है, भले ही घटनाओं के परिणाम शुभ हो या अशुभ। यदि आप निष्पक्षता पूर्वक अपने मन का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि चेतन तथा अचेतन मन में अनेक इच्छाएँ, वासनाएं, महत्वकाक्षाएं आदि भरी पड़ी रहती है। जिन्हें व्यक्ति पूरा करना चाहता है और ये अतृप्त इच्छाएं, वासनाएं द्वन्द्व और तनाव को जन्म देती है। भले ही हम अपने दैनिक जीवन में इन तनावों तथा द्वन्द्वों से परिचित न हो, ऐसे मनोरोगों के बचाव के लिए पूर्ण रूप से पतंजलि के क्रियायोग रूपी मनोचिकित्सा की वैराग्य प्रक्रिया ही सार्थक लाभ पहुँचाने में सफल एवं सिद्ध है। वैराग्य के अभ्यास से मनोरोगी के मन में आने वाली दुषित विचारों पर सन्तुलन होता है और मनोरोग ठीक होने लगता है।

इन्द्रियों पर नियंत्रण द्वारा मनोचिकत्सा

''विषयवती वा प्रवृतिरूत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी।''

पं0यो0सू0 1/35

अर्थात् इन्द्रियों के अनुभवों के अवलोकन द्वारा भी मन को स्थिर किया जा सकता है। इस सूत्र में बताया गया है कि इन्द्रियों के अनुभवों को यदि मन की आँखों से देखा जाय तो मन शांत और स्थिर तो होता ही हैं, नेत्रों, कानों, नासिका, जिव्हा, और त्वचा द्वारा होने वाले इन्द्रियानुभवों को भी मन के द्वारा देखा जा सकता है। इन इन्द्रिय अनुभवों के साथ मनश्चेतना को संयुक्त करने के फलस्वरूपम मन थमने लगता है। अन्य शब्दों में इस प्रकार भी कह सकते है कि भजन, कीर्तन और मत्रजप के ध्वनि पर मन को टिकानाचाहिए। व्यक्ति जैसे–जैसे ध्वनि के प्रति अत्यन्त सजग होता है उसके मन में गहरी शान्ति और स्थिरता आती हैं।

आंतरिक आलोक द्वारा मनोचिकत्सा

विशोका वा ज्योतिष्मती।''

(पाण्ड़ेय राजकुमारी पृष्ठ–22**)**

अर्थात् दुःखातीत ज्योति दर्शन द्वारा भी मन को नियंत्रित किया जा सकता है। यदि मनोरोगी या सामान्य व्यक्ति नाद अथवा भ्रुमध्य पर मन के एकाग्र करने से मानस पटल पर एक दिव्य ज्योति प्रकट होती हैं जो मन को शान्त और स्थिर करती है। यह अन्तर्ज्योति बड़ी शांत, गम्भीर और प्रशा ंतक होती है। इस ज्योति के अन्तर्दर्शन द्वारा मनोरोग जल्द ही नियन्त्रित तथा शान्त होती है।

इच्छानुसार इष्ट के धियान द्वारा मनोचिकत्सा

''यथाभिमतध्यानाद्वा।''

(मिश्र, नारायण पृष्ठ–55**)**

अर्थात् इच्छित ध्यान द्वारा भी मन को स्थिर किया जा सकता है। यहा ं मनोरोगी को पूरी स्वतंत्रता दी गई है। क्योंकि अपनी पसन्द की वस्तु पर यदि ध्यान किया जाय तो निश्चय ही मन शान्त, स्थिर और नियन्त्रित होता है। और इससे मनोरोगी का उपचार हो जाता है। अतः हम कह सकते है कि इन समस्त विधियों के माध्यम से मनोरोग के मूल कारण पंचक्लेश तथा समस्त सविघ्न और विघ्नों को दूर किया जाता है। जिससे मनोरोगी एक पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सकता है। अतः हम कह सकते है कि यह विघ्नों, सविघ्नों और पंचक्लेशों को दूर करने की विधि के द्वारा मनारोगी की मनोचिकित्सा किया जा सकता है।

अष्टांग योग द्वारा मनोचिकत्सा

अष्टांग योग महर्षि पतंजलि द्वारा रचित व प्रयोगात्मक सिद्धान्तों पर आधारित योग के परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक साधना पद्धति है। महर्षि पतंजलि ने अपने योगसूत्र नामक ग्रंथ में तीन प्रकार की योग साधनाओं का वर्णन किया है।'अष्टांग' शब्द दो शब्दों के मेल से बना है अर्थात् अष्ट + अंग, जिसका अर्थ है आठ अंगों वाला।

योगागांनुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।

(संदीप कुमार पृष्ठ 22)

अर्थात् योगाभ्यास द्वारा अशुद्धियां घटती जाती है तब कि अध्यात्मिक ज्ञान (विवेक ख्याति) यथार्थ की चेतना में परिणत नहीं हो जाती। अष्टांग योग के साधन से ज्यों–ज्यों ज्ञान बढ़ता जाता है त्यों–त्यों अज्ञान छूटता जाता है अन्तक –– में केवल वह सत्य ज्ञान ही शेष रह जाता है। इन साधनों से चित्त शुद्ध होता हैं शद्ध चित्त होने पर ही विवेक ज्ञान होता है। योग की अंगों के नाम और संख्या जिससे मनोचिकित्सा होती है...

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध्योऽष्टावग्नि।

(ब्रिजेश कश्यप पृष्ठ 22)

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के ये आठ अंग है।

निष्कर्ष

महर्षि पंतजलि के राजयोग के आठ अंग है। इसीलिए इसे अष्टांग योग अथवा राजयोग कहा जाता है। ये आठ अंग अन्योन्याश्रित तथा समान महत्व के है। इनमें से प्रथम पाँच यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार बहिरंग योग कहलाते है अन्य तीन धारणा, ध्यान और समाधि को अन्तरंग योग कहते है। बहिरंग योग का तात्पर्य उन अभ्यासों से है जिनका लक्ष्य बाहर परन्तु शरीर समाज तथा अन्य विषयों के सन्दर्भ में होता है। बहिरंग योग के दायरे में यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार आते है। धारणा, ध्यान तथा समाधि अन्तरंग योग के क्षेत्र में आते है। इनके अभ्यास से साधक का लक्ष्य आत्मचिन्तन होता है। इन अभ्यासों का लक्ष्य वस्तुनिष्ट नहीं अपितु आत्मनिष्ट होता है।

संदर्भ

1 पाण्ड़ेय राजकुमारी (2018), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम। राधा पब्लिकेशन, दिल्ली पृष्ठ–22.
2 व्यास महर्षि (2013), भगवदगीता। गीता प्रेस गोरखपुर। पृष्ठ–112.
3 योगेन्द्र पुरूषार्थी (2019), वेदो में योग विद्या। यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार। पृष्ठ–121.
4 मिश्र चन्द्र जगदीश (2010), भारतीय दर्शन। चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी। पृष्ठ–60.
5 डॉ0 आत्रेय (2020) पांतजली योग सूत्र योग मनोविज्ञान, शांति प्रकाश, पृष्ठ–213.
6 कश्यप सुभाष (2010), पतंजलि योगदर्शन लघुशोध, पृष्ठ 27 .
7 सरस्वती स्वामी सत्यानन्द (2014), पतंजलि योगदर्शन मुक्ति के चार सोपान, पृष्ठ–86.
8 पतंजलि महर्षि (2018), पातंजल योग प्रदीप। गीताप्रेस गोरखपुर। पृष्ठ–55.
9 नन्द लाल दशौरा (2016), पातंजल योग सूत्र। रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार। पृष्ठ–33.
10 राजवीर शास्त्री (2015), पतंजलियोग प्रदीप भाष्यम्। आर्श साहित्य प्रचार इस्ट, दिल्ली। पृष्ठ–55.
11 ओमानन्दतीर्थ, स्वामी (2013), पातंजलयोगप्रदीप – गीताप्रेस गोरखपुर 2008 पृष्ठ–44
12 करम्बेलकर, पी.बी. (2012), पातंजल योगसूत्र – कैवल्यधाम, लोनावला – 2005.पृष्ठ–50